ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान विषयों की अंतर्राष्ट्रीय सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध-पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
Impact Factor-8.002 (SJIF)
Vol.-3; Issue-4 (Oct.-Dec.) 2026
Page No.- 26-33
©2026 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Author's :

डॉ. झेलम चंद्रकांत झेंडे

सहयोगी प्राध्यापिका, वीर वाजेकर ए.एस. सी.कॉलेज,फुंडे, ता.उरण, जि.रायगड (महाराष्ट्र)

Corresponding Author :

डॉ. झेलम चंद्रकांत झेंडे

सहयोगी प्राध्यापिका, वीर वाजेकर ए.एस. सी.कॉलेज,फुंडे, ता.उरण, जि.रायगड (महाराष्ट्र)

मृदुला गर्ग के उपन्यासों में अभिव्यक्त स्त्री संघर्ष

सारांश : साहित्य रचनाकार के जीवन-जगत की अनुभूतियों और कल्पना के सहज समन्वय का रूपाकार है। लेखक को समाज की सभी परिस्थितियां प्रभावित करती हैं, ठीक वैसे ही जैसे एक कारीगर को कच्चा माल प्रभावित करता है। परिवेश से ली गयी अनुभूतियां ही रचनाकार की संवेदनाएं बनाती हैं। साहित्य में जीवन के साथ-साथ मानव-मन की तथा चरित्र की व्यापक गहराई दिखाई पड़ती है। समाज में व्याप्त विचारों का प्रभाव साहित्य में किसी न किसी रूप में देखा जा सकता है। समकालीन साहित्य की प्रत्येक विधा स्त्री जीवन के सभी संघर्षों को स्वर प्रदान करती है। नारी का संघर्ष पुरुषों से बराबरी करने या उनसे आगे निकल जाने का नहीं बल्कि उसका संघर्ष समाज में, परिवार में, स्वयं को स्थापित करने तथा अपनी अस्मिता की तलाश के लिए है।

स्त्री विमर्श स्त्री के जीवन के अनछुए, अनजाने पहलुओं, पीड़ा-जगत के उद्घाटन के अवसर उपलब्ध कराता है। वह स्त्री के प्रति हो रहे शोषण के खिलाफ एक सशक्त संघर्ष है। आज के समय में समकालीन कथा साहित्य पर चर्चा तब तक पूरी नहीं मानी जाती, जब तक उसमें स्त्री चिंतन, स्त्री अस्मिता से प्रेरित कथा को स्थान न दिया जाए। कहा जाता है कि किसी भी सभ्य समाज की संस्कृति, अवस्था और विकास आदि का मूल्यांकन उस समाज की स्त्रियों की स्थिति के आकलन द्वारा ज्ञात किया जा सकता है।

मूल शब्द : स्त्री, समाज, शोषण, पुरुष, अत्याचार, परिवार।

प्रस्तावना : मानव सभ्यता की विकास-यात्रा के समानांतर स्त्री का संघर्ष भी अपनी निरंतरता में आरम्भ से ही समाज में विद्यमान रहा है। देश-काल के साथ इस संघर्ष के सिर्फ स्वरूप बदलता रहा है। मूल स्वर में सामंती युग से लेकर आज के आधुनिक युग तक एकतानता है। हमारे समाज में स्त्री को कभी रीति-रिवाज के नाम पर तो कभी पितृसत्तात्मक अधिकार भावना के कारण, कभी पुरुष की अहम् भावना के कारण तो कभी

शिक्षित होने एवं आत्मनिर्भर होने के कारण सदैव कदम-कदम पर शोषण का शिकार होना पड़ा है। इस शोषण और उसके विरुद्ध स्त्री के नितांत निजी संघर्षों की लंबी एवं करुण कहानी है। उसे न केवल बाह्य समाज बल्कि स्वयं अपने परिवार से और यहाँ तक कि ख़ुद से भी निरंतर संघर्ष करना पड़ा है। इसी संघर्ष को सिमोन द बउआर ने अपनी पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' में बताया था कि "स्त्री पैदा नही होती, उसे बना दिया जाता है"[1] यह कथन देश-विदेश की सभी स्त्रियों के संघर्ष को पूर्णतया बयां करता है। भारतीय समाज में तो स्त्री को हमेशा से एक वस्तु के रुप में देखा जाता रहा है। रेखा कास्तकार स्त्री विमर्श के सरोकार पर बात करते हुए कहती हैं कि "स्त्री विमर्श का सरोकार जीवन और साहित्य में स्त्री मुक्ति के प्रयासों से है। स्त्री की स्थिति की पड़ताल उसके संघर्ष एवं उसकी पीड़ा की अभिव्यक्ति के साथ-साथ बदलते सामजिक संदर्भों में उसकी भूमिका, तलाशे गये रास्तों के कारण जन्में नयें प्रश्नों के टकराने के साथ-साथ आज भी स्त्री की मुक्ति का मूल उसके मनुष्य के रुप में स्वीकारे जाने का प्रश्न है ।"[2] इसी स्वीकारोक्ति की तलाश करते हुए प्रभा खेतान जी ने जब सिमोन द बोउआर की पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' का हिंदी में अनुवाद किया तब उन्होंने उसकी भूमिका में लिखा है कि- "हम भारतीय कई तहों में जीते हैं। यदि हम मन की सलवटों को समझते हैं, तो जरुर यह स्वीकारेंगे कि औरत का मानवीय रुप सहोदरा कही जाने के बावजूद स्वीकृत नहीं है। लोगों को उससे उम्मीदें बहुत होती हैं। वह अपनी सारी भूमिकाओं को बिना किसी शिकायत के निभाए...स्पष्टवादिता उसका गुनाह समझा जाता है।.."[3]

'अस्मिता' एक ऐसा शब्द है जो व्यक्ति को पहचान के एक अलग धरातल पर लाकर खड़ा कर देता है। डॉ. सुरेश चन्द्र गुप्त लिखते हैं- " अस्मिता को परिभाषित करना कठिन है, फिर भी 'मै हूँ' से लेकर 'मैं किस लिए हूँ' तक की अंतर्यात्रा कई पड़ावों से होकर अंततः अस्मिता के गंतव्य पर पहुँचकर ही पूरी होती है।"[4] बेहतर समाज की स्थापना हेतु जो मुक्ति संघर्ष की प्रणालियां इतिहास में रुपायित हुई हैं, उनमें एक है 'नारी चिंतन' है। इस चिंतन धारा के केंद्र में भी अस्मिता की तलाश का ही प्रश्न रहा है। स्त्री विमर्श के माध्यम से प्रारंभ हुई इस स्त्री अस्मिता के संघर्ष ने बदलाव का कोई बहुत बड़ा चमत्कार तो नहीं उत्पन्न किया परन्तु समाज की मानसिकता में आंशिक बदलाव की स्थिति अवश्य बनाई है।

सामान्य अर्थों में कहें तो स्त्री विमर्श स्त्री की अस्मिता मूलक पहचान को दिलाने का कार्य करता है। यह स्त्री के प्रति हो रहे शोषण के विरुद्ध संघर्ष है। 'स्त्री विमर्श' भी स्त्री को मनुष्य रुप में स्थापित करने का प्रयास करता है। 'स्त्री विमर्श' स्त्री की देह के धरातल पर मुक्ति की पक्षधरता के साथ-साथ उसकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, समानता की बात करता है। यह मात्र देह का विमर्श नहीं, बल्कि रुढ़ हो चुकी मान्यताओं, परम्पराओं के प्रति असंतोष तथा मुक्ति का स्वर है। वैसे तो भारत में नारी-चर्चा का इतिहास बहुत पुराना है, किन्तु वह लिखित रुप में हमें उपलब्ध नहीं है। अतः पश्चिम के स्त्री विमर्श की चर्चा पहले की जा सकती है, लेकिन हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श का प्रादुर्भाव 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से माना जाता है। जिसमें महिला रचनाकारों ने स्त्री के अधिकारों, शिक्षा, स्वावलंबन आदि पर लेखन कार्य किया, जिसका मुख्य स्वर नारी मुक्ति का था।

स्त्री विमर्श उत्तर-आधुनिकता की धुरी पर खड़ा एक सशक्त साहित्यिक विमर्श है। स्त्री विमर्श केवल स्त्री की मुक्ति या पुरुष की बराबरी का आख्यान नहीं है बल्कि अत्यंत गहन अर्थवाला यह शब्द नारी मुक्ति के साथ-साथ नारी की अस्मिता, चेतना, व स्वाभिमान को भी अपने में समेट लेता है। इसे ध्यान में रखते हुए हिंदी की समकालीन महिला कथाकारों ने जीवन के बहुविध पक्ष को लेकर लेखन कार्य किया है। तथापि इसमें संदेह नहीं है कि इसके केंद्र में नारी ही रही है। नारी जीवन की अन्त:बोध परिस्थितियों के अनछुए पहलुओं की प्रस्तुति के कारण इनकी कृतिया बहुमूल्य एवं विशिष्ट स्थान रखती हैं ।

कालक्रम की दृष्टि से देखा जाय तो आरम्भ में लेखिकाओं की रचनाधर्मिता प्रमुखतःउपदेश प्रधान रही। उनका

ध्यान नारी दुर्दशा की ओर जा तो रहा था, लेकिन वह उस दिशा में कुछ क्रांतिकारी कदम नहीं उठा पा रही थी। वह उसमें परम्परागत दृष्टिकोण ही अपना रही थी। भारतीय महिलाओं ने प्रारंभ में समाज सुधारकों की ऊँगली पकड़कर चलना सीखा किन्तु जल्द ही पुरुषों की ऊँगली छुड़ाकर दूर भी हो गईं। डॉ. रस्तोगी का मानना है कि "साहित्य के विकास में नारी का योग उसके भावनात्मक जगत के अस्तित्व की कहानी है ।"[5] इसी भावनात्मकता को आगे के दशकों में आने वाली महिला रचनाकारों ने स्त्री चेतना के विभिन्न आयामों के रूप में उजागर किया। पहले वह मूक पशु की तरह सब कुछ सहन करती थी, परन्तु अब वह पुरुष के अत्याचारों का विरोध कर अपनी अलग पहचान बनाने में सक्षम होती नजर आती है। यह चरण दरअसल महिला-लेखन की बहुत बड़ी उपलब्धि है। 'सुदर्शन' वर्तमान नारी की उपलब्धि बताते हुए कहते हैं कि "आज की शिक्षित नारी की प्रत्येक क्षेत्र में सक्रिय भूमिका है, शिक्षा, चिकित्सा, तकनीकी, कला, कविता, साहित्य-सृजन, पर्वतारोहण, कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ नारी ने प्रवेश न किया हो।"[6]

कृष्णा सोबती, चित्रा मुद्गल, मंजुल भगत, उषा प्रियम्वदा, ममता कालिया आदि लेखिकाओं ने समाज में व्याप्त विभिन्न विद्रूपताओं, राजनैतिक-आर्थिक मुद्दों तथा स्त्री अस्मिता, पारिवारिक घुटन आदि को अपने कथा साहित्य का प्रमुख विषय बनाया। तमाम दूसरे विषयों के बावजूद इनके साहित्य में स्त्री मुक्ति का प्रश्न ही केंद्र में है। मृदुला गर्ग भी उन महिला रचनाकारों में से एक हैं, जिन्होंने अपने साहित्य में स्त्री मुक्ति के प्रश्न को साहस के साथ उजागर किया। हालांकि उनके कथा साहित्य का आधार स्त्री-स्वातंत्र्य पर स्थिर ज़रूर है, तथापि वे स्त्री मुक्ति के प्रश्न को अन्य समकालीन लेखिकाओं की तरह नहीं देखती हैं। उनका ट्रीटमेंट अपने समकालीनों से अलग दिखाई देता है। उनके लिए समाज में पुरुषों की बराबरी कर लेना या पुरुषों से आगे बढ़ जाना तथा सामाजिक एवं संवैधानिक अधिकार प्राप्त कर शारीरिक रूप से स्वतंत्र हो जाना मात्र ही स्त्री स्वतंत्रता नहीं है। उनके लिए स्त्री की मुक्ति का अर्थ तन और मन दोनों की मुक्ति में निहित है। वे 'फेमिनिज्म' का अर्थ दरअसल सोच की जकड़बंदी मुक्ति के रूप में लेती हैं। समाज की सड़ी-गली मान्यताओं, संस्कारों आदि से मुक्ति पा लेना ही उनके लिए स्त्रीवाद का हासिल है। मृदुला जी नारीवाद की परिभाषा देते हुए कहती हैं कि- "नारीवाद की परिभाषा बस इतनी है कि नारी को अधिकार है यह तय करने का कि वह क्या करना चाहती है? क्या नहीं? कोई मुखौटा नहीं की स्त्रियों पर चस्पा कर दिया जाए।"[7]

नर-नारी संबंध मृदुला गर्ग के प्रायः सम्पूर्ण साहित्य के केन्द्रीय सूत्र रहे हैं। वैसे तो कई उपन्यासकार नर-नारी संबंधों को पारम्परिक, नैतिक मान-मर्यादाओं के घेरे में रखकर चित्रित करते हैं, परन्तु मृदुला जी ने कभी भी इन बन्धनों को स्वीकार नहीं किया। उनका मानना है कि दाम्पत्य जीवन में एकरसता तथा आपसी सामंजस्य न होने के कारण या प्रेम के आभाव के कारण ही विवाहेतर संबंध स्थापित होते हैं। मृदुला जी 'शरीर के प्रेम' अर्थात वह प्रेम जो मन या उसकी किसी भावना से नहीं उपजता, बल्कि आहार, निद्रा, भय की तरह शारीरिक आवश्यकताओं के रूप में प्रकट होता है, को पशुवृति मानने से इनकार करती हैं। वे शारीरिक संबंधों का सम्बन्ध नैतिकता–अनैतिकता अथवा पाप-पुण्य से न जोड़ते हुए प्राकृतिकता से जोड़ती हैं। 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में उनकी कथा नायिका की मान्यता- "प्यार करना कला नहीं, जरूरत है", मृदुला जी की प्रेम सम्बन्धी मौलिक और बोल्ड मान्यता को रेखांकित करती है। उपन्यास की पात्र मनीषा का यह कहना कि "यूँ तो इंसान की न जाने कितनी जरूरतें होती हैं, लेकिन यह जरूरत ऐसी है, जिसमें कोई अन्य व्यक्ति भी सम्मिलित रहता है। बिना शोषण इसकी पूर्ति भी तभी हो सकती है जब दोनों की जरूरत एक हो। जब जरूरतें एक हों तो शरीर का मिलन अद्भुत अनुभव बन जाता हैं।"[8] उनके यहाँ प्रेम शुरु से अंत तक शरीर का विषय है, शरीर का अर्थात अपनी जरूरतों का। मृदुला जी की दृष्टि में प्रेम का यथार्थ 'शरीर' है। उपन्यास में मनीषा प्रेम को पाने के क्रम में जितेन को छोड़ मधुकर की ओर आकर्षित होती है लेकिन उसे पूर्ण प्रेम की प्राप्ति कहीं नहीं होती। ऐसा प्रेम जो उसे आत्मसंतुष्ट कर दे, एक अंतहीन तलाश बन कर रह जाता है। इस उपन्यास की मुख्य समस्या नारी के जीवन की रिक्तता है, जिससे मनीषा पूरे उपन्यास में जूझती नजर आती है। उपन्यास में नायिका पति

जीतेन से तलाकशुदा होने पर भी जब दुबारा चार साल बाद उससे मिलती है तब जीतेन के प्रति उसके शारीरिक समर्पण पर अधिकांश विचारकों ने प्रश्न चिह्न लगया है और उसे स्त्री की मर्यादा के विरुद्ध बताया है, परन्तु डॉ. शीलप्रभा मृदुला गर्ग का समर्थन करते हुए इसे आधुनिकता और विचारों का लचीलापन मानते हुए कहती हैं कि "यदि यह स्थिति पूर्व युग की होती तो पति को पत्नी की सूरत भी सहन नही हो सकती थी। किन्तु आज के युग में जहाँ विचार प्रौढ़ हो चुके हैं उनमें लचीलापन आ गया है, ऐसे क्षणिक पुनर्मिलन भी संभव है।"[9]

उपन्यास के अंत तक पहुँचते-पहुँचते कथा नायिका को यह अहसास हो जाता है कि उसे अपने खालीपन को किसी अन्य के द्वारा नहीं बल्कि स्वयं भरना होगा और वह खुद लेखन कार्यों से जुड़ जाती है। जिससे उसे आत्म संतुष्टि प्राप्त होती है। उसको एक अलग पहचान मिलती है। वह लेखिका के रूप में समाज में प्रतिष्ठित होती है। इस उपन्यास के द्वारा मृदुला जी ने नारी के अस्मितामूलक संघर्ष, प्रेम की तलाश तथा आत्मसंतुष्टि की प्यास जैसे प्रश्नों को न सिर्फ उठाती हैं बल्कि उसका हल भी तलाशती दिखाई देती हैं।

मृदुला जी नारी को परम्परागत सोच से मुक्ति दिलाकर उसे आत्मनिर्भर बनाना चाहती हैं। स्त्री मुक्ति का उपाय बताते हुए मार्क्स एंजेल्स ने भी कहा था- "स्त्रियों की मुक्ति की पहली शर्त यह है कि पूरी नारी जाति फिर से सार्वजानिक उद्योग में प्रवेश करे और आवश्यकता है कि समाज की आर्थिक इकाई होने का वैयक्तिक, पारिवारिक गुण नष्ट कर दिया जाए।"[10] उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' में जैसे इसी विचार का भारतीय स्त्री मुक्ति के संदर्भ में प्रतिफलन दिखाई देता है। मृदुला गर्ग के इस उपन्यास में पुराने नैतिक मूल्यों का विरोध तथा प्रेम सम्बन्धी नयी नैतिकता का चित्रण इसी शर्त पर आधारित है। अब तक स्त्री स्वयं को पुरुष की दृष्टि से स्वयं को परिभाषित करती आ रही थी। वह अबतक अपनी सार्थकता किसी अन्य व्यक्ति से जुड़ने में तलाश रही थी। लेकिन इस उपन्यास में आधुनिका नायिका मनीषा अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को परिभाषित करने हेतु प्रयासरत दिखाई देती है। वह सामाजार्थिक रूप से अपने आपको आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास करती है और अपनी सार्थकता अपनी आत्मनिर्भरता में ही ढूँढती है। योगेश गुप्त के शब्दों में – "मृदुला गर्ग अपने साहित्य में वैयक्तिक से सामाजिक और सामाजिक से वैज्ञानिक, वैज्ञानिक से दार्शनिक की यात्रा करती दिखाई देती हैं। थीम की कटेगरी के प्रति उनका कोई पूर्वाग्रह नहीं है और न ही कोई आग्रह। घटनाओं और चरित्रों को सहज भाव से व्यक्त करती हैं और न यह मानती हैं कि थीम जितना नया होगा कला उतनी ही निखरेगी। प्रयोगधर्मा कथाकार होने के नाते उनकी सम्भावनाओं की शायद ही कोई सीमा निर्धारित की जा सकती है। अच्छी बात यह है कि कथ्य के स्तर पर वह शत-प्रतिशत फासिस्ट हैं और साहित्य में लम्बी खोज की यात्रा की पहली शर्त शायद यही है।"[11]

मृदुला जी का सबसे पसंदीदा विषय प्रेम है, परन्तु उन्होंने विवाहपूर्व प्रेम की अपेक्षा विवाहेतर प्रेम का चित्रण अपने उपन्यासों में कहीं अधिक किया है। यह वह प्रेम है जिसे समाज ने हमेशा नकारा है और शायद यही कारण रहा है कि उनके 'चित्तकोबरा' उपन्यास को भी विवादों के कठघरे में खड़ा होना पड़ा। हालांकि यह उपन्यास मनुष्य जीवन में प्रेम की सार्थकता सिद्ध करने में तथा उसके विविध वर्णी स्वरूप निर्धारण में बहुत ही अनूठा है तथापि अपने इस उपन्यास में मृदुला जी ने प्रेम का चित्रण जिस रूप में किया है वह कथित तौर पर थोड़ा बोल्ड है। शायद यही बोल्डनेस लोगों को पसंद नहीं आई जिस कारण इस उपन्यास को विवादों से जूझना पड़ा। इस उपन्यास में पुरुष की बराबरी करती स्त्री की देह गाथा और मनः गाथा दोनों का सम्यक चित्रण मिलता है। मृदुला गर्ग ने चित्तकोबरा उपन्यास में पारस्परिकता के विरुद्ध मोर्चा खड़ा करके स्त्री को अनेक तथाकथित मर्यादा बंधनों से मुक्ति दिलाई है। "इस उपन्यास में शीलता और अश्लीलता का प्रश्न उठाकर प्रायः उन समस्याओं से आँखे चुराने की कोशिश होती है, जिनके आधार पर स्त्री को कथित मर्यादा की सीख दी जाती है। यह एक लेखिका के साहस का प्रश्न माना जाना चाहिए कि उसने मजबूती से पारस्परिकता के विरुद्ध खड़े होकर नये समय में नई जीवन दृष्टि की मांग करने की चुनौती प्रस्तुत की

है।"[12]

'चित्तकोबरा' उपन्यास में मनु, रिचर्ड और महेश तीन पात्र हैं। मनु का विवाह महेश से हो चुका होता है, रिचर्ड मनु के जीवन में बाद में आता है। महेश और मनु ऐसे पति-पत्नी हैं, जो एक-दूसरे से असंतुष्ट हैं। महेश मनु की सभी जरूरतें पूरी करता है। मनु भी अपना पत्नी धर्म निभाती है। तथापि उनके रिश्ते सहज नहीं हैं। इस असहजता के कारण ही मनु रिचर्ड की तरफ आकर्षित होती है। मृदुला जी के उपन्यासों की खास बात यह है कि वे कभी अपने उपन्यास में पुरुष पात्र, जो मुख्य स्त्री पात्र का पति है उसे गलत या प्रतिनायक नहीं साबित करतीं। वे ख़ुद अपनी नायिका के मुख से ही कहलवाती हैं कि महेश बहुत अच्छे हैं, मेरा बहुत ख्याल रखते हैं, मेरी सभी जरूरतों को पूर्ण करते हैं।... इस तरह यह उपन्यास मनु- महेश-रिचर्ड के त्रिकोणात्मक प्रेम सम्बन्धों की कथा बन जाता है। इस उपन्यास में मृदुला जी प्रेम को स्त्री-पुरुष संबंधो के धरातल से ऊपर उठाकर अध्यात्मिक अनुभूति की की ओर ले जाती हैं। वे कहती हैं कि - "एक से निस्वार्थ प्रेम करने पर अहम् का धीरे-धीरे विभाजन होता है और व्यक्ति उस बिंदु पर पहुँच जाता है जहाँ मानव मात्र से प्रेम के आदर्श तक पहुंचना सरल और संभव होता है चाहे वह रिचर्ड में देखा जाय या मदर टेरेसा में।"[13] यहीं भावभूमि चितकोबरा उपन्यास की ताकत भी है तथा उसकी प्रेरणा भी।

'चितकोबरा' में मृदुला गर्ग ने आज के परिवेश में विवाह संस्था की निरर्थकता को भी रुपायित किया है। वे प्रेम, विवाह और सेक्स जैसे मूलभूत तथ्यों को लेकर इस उपन्यास का ताना-बाना बुनती हैं। वर्तमान समय में प्रेम से भावुकता का तत्व समाप्त हो गया है और वह सिर्फ भोग और वासना का पर्याय बन कर रह गया है। इस उपन्यास में लेखिका ने प्रेम को एक स्थिति के रूप में चित्रित किया है। उपन्यास में 'विवाह एक से और प्रेम दूसरे से' वाली बात दृष्टिगोचर होती है और इन दो पाटों के बीच पिस रहे मानव मन की एक विचित्र स्थिति को लेखिका ने अपने उपन्यास का विषय बनाया है। वे कहती हैं- "मनुष्य का मन बड़ा विचित्र है। प्राप्त से उसका मन नहीं भरता और अप्राप्त के प्रति एक आकर्षण उसके मन में सदैव रहता है। उसके तन और मन की सम्पूर्ण तृप्ति कभी भी किसी एक से नहीं होती।"[14] इस उपन्यास में लेखिका ने पहले से चली आ रही क्षुद्र मान्यताओं को तथा स्त्री के लिए बनाई गयी अमानवीय सीमाओं को तोड़ा है। इस उपन्यास में स्त्री-पुरुष संबंधो की व्याख्या एक नये धरातल पर लेखिका ने की है। उन्होने शरीर और मन के द्वंद्व से उत्त्पन्न काम-कुंठा को नष्ट करने के लिए नैतिकता के बन्धनों को तोड़कर यौन संबंधो के विषय में नारी की भावनाओं पर बेबाक होकर प्रकाश डाला है। सामाजिकता के नाम पर स्त्री-पुरुष के संबंधो पर थोपे गये नियम-कानून को लेखिका ने यहाँ अस्वीकार कर दिया है।

उनके एक अन्य उपन्यास "मैं और मैं" में भी औरत के शोषण की कहानी दिखाई गयी है। किस प्रकार अपने अहम की तुष्टि करने वाली एक लेखिका आर्थिक और नैतिक शोषण का शिकार होती है इसका मार्मिक चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। यह उपन्यास एक उच्चवर्गीय लेखिका के अपराधबोध और एक निम्नवर्गीय लेखक के अपराधबोध की टकराहट की कहानी भी कहता है। इस उपन्यास में माधवी, संजय और कौशल तीन पात्र हैं। माधवी लेखिका है और कौशल भी। इस उपन्यास में वैचारिक धरातल पर दोनों रचनाकारों के अहम की टकराहट को दिखाया गया है, साथ ही कौशल द्वारा माधवी के रूप में ब्लैकमेल की गयी एक लेखिका का सूक्ष्म विश्लेष्ण भी किया गया है। इस उपन्यास में 'परिवार' जो कि स्त्री का सीमित क्षेत्र है, की हद को पार कर एक अलग कलात्मक प्रस्तुतिकरण किया गया है।

यह उपन्यास पाठक को भावनात्मक और वैचारिक दोनों धरातलों पर चिंतन हेतु बाध्य करता है। उपन्यास में एक स्त्री को अबला और भोली समझ उसे ठगने वाले धूर्त पुरुष की कहानी है। कथा-पात्र कौशल मानवीय स्तर से गिरा हुआ एक धूर्त अपराधी दिमाग रखने वाला व्यक्ति ही दिखायी देता है। यहाँ एक सामान्य स्त्री के दुःख दर्द की परिपाटी से हटकर एक लेखिका के जीवन संघर्ष की कथा को कथ्य का विषय बनाया गया है जो अपेक्षाकृत

चिंतनशील भी है, और सजग भी। उसके आस–पास की दुनिया एक झूठ की दुनिया है- एक 'फेक वर्ल्ड' जिसमें रिश्तों की बुनियाद ही झूठ पर टिकी है। उपन्यास में एक जगह लेखिका कहती है- "कितना आसान है एक के बाद एक झूठ बोलते चले जाना और कितनी खूबसूरत, पारदर्शी और रंगबिरंगी है झूठ की दुनिया। उसके सामने सच क्या है, एक ठोस मटमैला खुरदुरा पत्थर, झूठ की दुनिया में उड़ान भरनेवाला, कल्पना के गुब्बारे में सुई चुभाकर पथरीली धरती पर क्यों उतरेगा?"[15] अर्थात यह रंगीन फेक वर्ल्ड ही अब हमरे समय की सबसे बड़ी सच्चाई है और हमारी नियति भी। दरअसल यह उपन्यास पूंजीवादी व्यवस्था का आईना है। जिसमें मानवीय रिश्तों का बिम्ब और भी कुरुप और वीभत्स दिखाई देता है। यहाँ पूँजी मानवीय सम्बन्धों को निर्धारित भी करती है और उसका नियमन भी।

लेखिका का 'कठगुलाब' उपन्यास भी इसी तरह के स्त्री संघर्षों को दर्शाने वाला एक बहुचर्चित उपन्यास है। मृदुला जी का यह उपन्यास नारी दमन और शोषण को दिखाते हुए नारी के संघर्ष की गाथा कहता है। इसमें नारी को प्रताड़ित करती आ रही आत्मघाती सामाजिक व्यवस्था से परिचित कराना लेखिका का प्रयोजन है। इस उपन्यास में नारी पर पुरुष द्वारा होने वाले आर्थिक, शारीरिक और बौद्धिक शोषण की प्रतिक्रिया स्वरूप आत्मनिर्भरता तथा पुरुष सत्ता के समानांतर स्वयं को सिद्ध करने के लिए की गयी नारी की जद्दोजहद की कथा है। इस उपन्यास में उन्होंने दिखाया है कि चाहे पूरब हो या पश्चिम, पुरुष की मानसिकता समान है। बस की भीड़-भाड़ में धँसी लड़की हो या सुनसान इलाके में पैदल चलती लड़की, पुरुष की लार टपकती नज़रों से उसका बच पाना असंभव है। स्त्री पर हो रहे शोषण को दर्शाते हुए उपन्यास में लेखिका एक जगह पर नायिका नमिता द्वारा कहलवाती है कि – "कैसी अभागिने हैं हम दोनों, मेरी जिंदगी माँ ने चौपट की, तेरी पिता ने।"[16] इस उपन्यास में लेखिका ने स्त्री की अस्मिता के सवाल को उठाया है। लेखिका ने इस उपन्यास में स्त्री को स्त्री रूप में स्थापित किया है। जिस तरह कठगुलाब के बीज को पानी न दें तो वह सूख जाता है, उसकी कलियां नहीं खिलतीं ठीक उसी प्रकार जब तक स्त्रियों को अपनेपन और सम्मान रूपी भावजल से भिगोया न जाए तब तक वह भी कठगुलाब के समान कठोर बनी रहती है। जब तक अपनापा और सम्मान नहीं मिलता इसकी कलियाँ भी तब तक नहीं खिलतीं। फूल नष्ट हो जाते हैं और बस बीज बचा रह जाता है। यहीं दर्शन इस उपन्यास की स्त्रियों को प्रेरित करता है और वह अपने स्त्रीत्व की सम्पूर्ण सार्थकता 'ममत्व' को पाने में समझती हैं और तमाम संघर्षों के बाद ही सही उसे अंततः पा भी लेती है। ममत्वपूर्ण स्त्रीत्व की इस तलाश की प्रक्रिया में ही यह उपन्यास सम्पन्न होता है ।

अपने अन्य समकालीनों की तरह मृदुला जी केवल स्त्री की आर्थिक, शारीरिक स्वतंत्रता और अधिकारों की बात ही नहीं करतीं अपितु स्त्री के राजनीतिक, संवैधानिक अधिकारों के लिए भी आवाज उठाती हैं। अपने 'वंशज' उपन्यास में उन्होंने स्त्री को उसके प्रदत संवैधानिक अधिकारों से भी वंचित कर दिये जाने के प्रश्न को बड़ी मजबूती से उठाया है। उपन्यास में नायक सुधीर उसकी पत्नी और बहन रेवा की कहानी है। इस उपन्यास में स्त्री को पैतृक संपत्ति में अधिकार देने की बात की गयी है। आज भी उसके अधिकारों की अवहेलना की जा रही है, जबकि आज हमारे संविधान में यह प्रारुप है कि पिता की सम्पत्ति में पुत्री का बराबर का अधिकार है। लेकिन समाज अभी उसे अपना नहीं पाया है। समाज आज भी पुत्री में सारी योग्यता होते हुए भी अपनी सम्पत्ति में अधिकार पुत्र को ही देता है, पुत्री को नहीं। इसी परिप्रेक्ष्य में डॉ रमा नवले कहती हैं-"शुक्ल साहब जैसा अत्यंत न्यायप्रिय आदमी और सुधीर से अधिक रेवा को चाहने वाला लड़की को पैतृक सम्पत्ति में हिस्सा नहीं देता। तब कानून बनाने से क्या होता है, वंशज तो लड़का ही रहेगा, लड़की कभी नहीं, इस कटु सत्य की अभिव्यक्ति यह उपन्यास करता है।"[17]

मृदुला गर्ग का उपन्यास 'मिलजुल मन' उनके अब तक के सभी उपन्यासों से अलग ही तरह का उपन्यास है। यह एक आत्मकथात्मक उपन्यास है, यानि यह एक ऐसी आत्मकथा है जिसे उपन्यास का रुप दे दिया गया है। ऐसा संभवतः इसलिए किया गया है क्योंकि एक आत्मकथा लेखक से जिस ईमानदारी से साफगोई और विश्वसनीयता की

मांग करती है उपन्यासों में किसी सीमा तक उससे बचने की गुन्जाइश बनी रहती है। यहाँ कथा की ओट बनी रहती है। यौवन की बीहड़ सच्चाइयों को उपन्यास की सिलवटों में छिपते-छिपाते आसानी से दिखाया जा सकता है। आत्मकथा सच का सामना करने के लिए होने वाले पोलिग्राफिक टेस्ट की तरह होती है। जिसका सामना करने का साहस हर लेखक में नहीं होता।

यह उपन्यास दो बहनों गुलमोहर और मोगरा की कहानी के रूप में रचित है, जो दरअसल प्रकारांतर से मंजुल भगत और मृदुला गर्ग की कहानी ही बयां करती है। यहाँ मोगरा स्वयं मृदुला गर्ग हैं और गुलमोहर उनकी बड़ी बहन मंजुल भगत। जिसमें गुल की कहानी मोगरा कहती चलती है और कभी-कभी बीच-बीच में खुद गुल भी सूत्र थाम लेती है। इसलिए इसका शीर्षक 'मिलजुल मन' रखा गया है। वैसे इस उपन्यास के शीर्षक की प्रतीकात्मकता को समझाते हुए मृदुला जी एक साक्षात्कार में कहती हैं कि- "मन का अर्थ अत्यंत बहुआयामी है वह दिल भी है, मस्तिष्क भी, चेतना भी और कल्पना भी, अस्तित्व भी वही है। मन के साथ मिलकर जो काम कर सके या जो अपने मन को पहचान ले वही सही मायने में अपने अस्तित्व को पहचान सकता है। इसलिए इसका नाम 'मिलजुल मन' रखा।"[18] आगे वह उसी साक्षात्कार में इस उपन्यास के उद्देश्य को समझाते हुए बताती हैं कि "'मिलजुल मन' उपन्यास आतंरिक जीवन में औरत और मर्द में अन्तर न करके दोनों को अभिव्यंजित करता है। साथ ही देश के नवस्वाधीन स्वरुप की व्यंजना भी उसी तरह करता है कि वह मानवीय है, किसी एक गुट, वाद या लिंग का पक्षधर नहीं।"[19] मृदुला जी को इस उपन्यास में भी स्त्री अस्मिता के पक्ष में कहने का जब-जब भी मौका मिला है, उन्होंने उसका पूरा उपयोग किया है। अपने पिता के बच्चों से लगाव की व्याख्या करते समय वे यह निष्कर्ष देने का अवसर निकाल लेती है कि "पितृत्व को मातृत्व में समा, उसे जनाना बनाना, मेरे ख्याल से पितृसत्ता की सबसे अचूक चाल रही है।"[20]

आत्मनिर्भरता को वे नारी सशक्तिकरण हेतु पहली शर्त मानती हैं। अपने इस उपन्यास में भी उन्होने आत्मनिर्भरता के महत्व को बखूबी रेखांकित किया है। उपन्यास के आरम्भ में वे एक जगह पर गुल की आत्मनिर्भरता का संकेत देते हुए कहती हैं कि - "अपना बायां हाथ कलाकार है, दायां मजदूर।"[21] इससे साफ़ परिलक्षित होता है कि वे आधी दुनिया को अपना उदाहरण प्रस्तुत करते हुए संदेश देती हैं कि वर्तमान समय में स्त्रियों में इतनी काबिलियत है कि वह बाहर और भीतर दोनों का कार्य साथ-साथ कर सकती हैं। जिस प्रकार गुल का बायां हाथ कलाकार है, यानि उसकी सृजनात्मकता तथा सौंदर्य का बोधक है तो दायां हाथ उसकी कार्यकुशलता और मजबूती का प्रतीक है। यह सौंदर्य और यह कार्यकुशलता पुरुष लाख चाहे तो भी हासिल नहीं कर सकता।

निष्कर्ष : रूप में हम कह सकते हैं कि मृदुला जी अपने उपन्यासों में समस्याओं को सिर्फ चित्रित ही नहीं करतीं वरन उसका निदान भी बताती हैं। वे अपने पात्रों को स्थितियों से संघर्ष करते हुए भौतिकता के धरातल से उठाकर तार्किक दृष्टि के साथ अपने अस्तित्व और इच्छाओं के लिए निर्णय लेते हुए दिखाती हैं। उनकी सभी स्त्री पात्र अपने जीवन का निर्णय स्वयं लेती हैं। वे किसी और के सहारे के लिए प्रतीक्षारत नहीं रहतीं। मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज के प्रत्येक वर्ग की स्त्री के संघर्षों का चित्रण कर उसकी दशा और दिशा से पाठक वर्ग को अवगत कराया है। वे अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज में स्त्री को वस्तु नहीं मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठित करने को तत्पर हैं। हिन्दी कथा साहित्य में उनके उपन्यास पहली बार हीनता-ग्रंथी और अपराधबोध से मुक्त एक कुंठा मुक्त स्त्री-चेतना की रचना करते हैं। मृदुला गर्ग के उपन्यासों में चित्रित स्त्री का यह स्वरुप और स्त्री चेतना का यह स्वर स्त्री विमर्श की भविष्योन्मुखी प्रस्तावना है।

सन्दर्भ :

1. प्रभा खेतान, स्त्री उपेक्षिता, (भूमिका भाग से) हिंदी पॉकेट बुक्स, 2008, नई दिल्ली
2. रेखा कास्तकार, स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, पृ.. 25 राजकमल प्रकाशन, 2006, नई दिल्ली

3. प्रभा खेतान, स्त्री उपेक्षिता, 1992, (भूमिका भाग से) हिंदी पॉकेट बुक्स , 2008, नई दिल्ली
4. मृणाल पाण्डेय, स्त्री देह की राजनीती से देश की राजनीती, पृ. 14, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2008, नई दिल्ली
5. डॉ.शैल रस्तोगी; हिंदी उपन्यासों में नारी, पृष्ट-13, वि. भू. प्रकाशन, 1977, साहिबाबाद
6. वैशाली श्रीवास्तव, स्त्री सशक्तिकरण के मायने, भारतीय समाज के सन्दर्भ में, त्रैमासिक पत्रिका,पृ.161
7. मृदुला गर्ग, 2012, मेरे साक्षात्कार पृ. 93, किताब घर प्रकाशन, दिल्ली
8. मृदुला गर्ग, 2002, उसके हिस्से की धूप, पृ. 44, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
9. डॉ शीलप्रभा वर्मा, महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामजिक सन्दर्भ, पृ. 155,इस्टर्न बुक लिंकर्स,1998, नई दिल्ली
10. दर्शन पाण्डेय, नारी अस्मिता की परख, पृ.2, संजय प्रकाशन, 2004, नई दिल्ली
11. योगेश गुप्त, नारी का रचना संसार, आजकल पत्रिका -दिसम्बर 1977 ,पृ-35
12. डॉ ज्योतिष जोगी, लेख बीते दो दशकों और हिंदी उपन्यास की यात्रा, नया मापदंड, अक्तूबर- दिसम्बर पृ.12, 1999
13. मृदुला गर्ग, 2013, चितकोबरा, पृ.96, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
14. मृदुला गर्ग, 2013, चितकोबरा,177, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
15. मृदुला गर्ग, 2001, मैं और मैं, पृ. 213, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
16. मृदुला गर्ग, 2012, कठगुलाब, पृ.20, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
17. डॉ. रमा नवले, मृदुला गर्ग के कथासाहित्य में नारी, पृ. 77, विकाश प्रकाशन, कानपुर
18. मृदुला गर्ग, 2012, मेरे साक्षात्कार पृ.110, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली
19. मृदुला गर्ग, 2012, कठगुलाब, वही. पृ.105, ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली
20. मृदुला गर्ग; 2009, मिलजुल मन, पृ.53, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
21. मृदुला गर्ग, 2009, मिलजुल गर्ग, पृ.21, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

•